3 शंका–समाधान

•••••

पुस्तक ४, पृष्ठ ३८

१ शंका – पृष्ठ ३८ पर लिखा है– 'मिच्छाइड्डिस्स सेस–तिण्णि विसेसणाणि ण संभवंति, तक्कारणसंजमादिगुणाणमभावादो' यानी तैजससमुद्घात प्रमत्तगुणस्थान पर ही होता है, सो इसमें कुछ शंका होती है। क्या अशुभ तैजस भी इसी गुणस्थान पर होता है ? प्रमत्तगुणस्थान पर ऐसी तीव्र कषाय होना कि सर्वस्व भस्म कर दे और स्वयं भी उससे भस्म हो जाय और नरक तक चला जाय, ऐसा कुछ समझमें नहीं आता ?

समाधान – मिथ्यादृष्टिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्घात, तैजसमुद्घात और केवलिसमुद्धात संभव नहीं है, क्योंकि, इनके कारणभूत संयमादि गुणोंका मिथ्यादृष्टिके अभाव है। इस पंक्तिका अर्थ स्पष्ट है कि जिन संयमादि विशिष्ट गुणोंके निमित्त आहारकऋद्धि आदिकी प्राप्ति होती है, वे गुण मिथ्यादृष्टि जीवके संभव नहीं हैं। शंकाकारके द्वारा उठाई गई आपत्तिका परिहार यह है कि तैजसशक्तिकी प्राप्तिके लिये भी उस संयम-विशेषकी आवश्यकता है जो कि मिथ्यादृष्टि जीवके हो नहीं सकता। किन्तु अशुभतेजसका उपयोग प्रमत्तसंयत साधु नहीं करते। जो करते हैं, उन्हें उस समय भावलिंगी साधु नहीं, किन्तु द्रव्यलिंगी समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५

२ शंका– विदेहमें संयतराशिका उत्सेध ५०० धनुष लिखा है, सो क्या यह विशेषताकी अपेक्षासे कथन है, या सर्वथा नियम ही है ? (नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान– विदेहमें संयतराशिका ही उत्सेध नहीं, किन्तु वहां उत्पन्न होनेवाले मनुष्यमात्रका उत्सेध पांचसौ धनुष्य होता है, ऐसा सर्वथा नियम ही है जैसा कि उसी चतुर्थ भागके पृ. ४५ पर आई हुई ''एदाओ दो विओगाहणाओ भरह-इरावएसु चेव होंति ण विदेहेसु, तत्थ पंचधणुस्सदुस्सेधणियमा'' इस तीसरी पंक्तिसे स्पष्ट है। उसी पंक्ति पर तिलोयपण्णत्तीसे दी गई टिप्पणीसे भी उक्त नियमकी पुष्टि होती है। विशेषके लिये देखो तिलोयपण्णत्ती, अधिकार४, गाथा २२५५ आदि।

पुस्तक ४, पृष्ठ ७६

३ शंका – पुष्ठ ७६ में मूलमें ''मारणंतिय' के पहलेका 'मुक्क' शब्द अभी विचारणीय प्रतीत होता है ? (जैनसन्देश, ता. १३-४-४२)

समाधान – मूलमें 'मुक्कमारणंतियरासि' पाठ आया है, जिसका अर्थ- 'किया है मारणांतिकसमुद्धात जिन्होंने'' ऐसा किया है। प्रकरणको देखते हुए यही अर्थ समुचित प्रतीत होता है, जिसकी कि पुष्टि गो.जी. गा. ५४४ (पृ. ९५२) की टीकामें आए हुए 'क्रियमाणमारणान्तिकदंडस्य,; 'तिर्यग्जीवमुक्तोपपाददंडस्य', तथा, ५४७ वी गाथाकी टीकामें (पृ ५६७) आये हुए 'अष्टमपृथ्वीसंबंधिबादरपर्याप्तपृथ्वीकायेषु उप्पत्तुं मुक्तत्समुद्घातदंडानां' आदि पाठोंसे भी होता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि द्वितीय व तृतीय उद्धरणमें जिस अर्थमें 'मुक्त' शब्दका प्रयोग हुआ है, प्रथम अवतरणमें उसी अर्थमें 'क्रियमाण' शब्दका उपयोग हुआ है और यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि प्राकृत 'मुक्क' शब्दकी संस्कृतच्छाया 'मुक्त' ही होती है। पंडित टोडरमल्लजीने भी उक्त स्थलपर 'मुक्त' शब्दका यही अर्थ किया है। इस प्रकार 'मुक्क' शब्दके किये गये अर्थमें कोई शंका नहीं रहा जाती है।

पुस्तक ४, पृष्ठ १३५

४ शंका – उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त अन्य

उपशमसम्यग्दृष्टि जोवोंके मरणका निषेध है, इससे यह ध्वनित होता है कि उपशमश्रेणीमें चढनेवाले उपशसम्यग्दृष्टि जोवोंका मरण नहीं होता। परन्तु पृष्ठ ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर स्पष्टतासे चढते हुए भी मर लिखा है, सो क्या कारण है ?

(नाकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४४२)

समाधान– उक्त पृष्ठपर दी गई शंका-समाधानके अभिप्राय समझनेमें भ्रम हुआ है। यह शंका-समाधान केवल चतुर्थ गुणस्थानवर्ती उन उपशमसम्यग्दृष्टियोंके लिये है, जो कि उपशमश्रेणीसे उतरकर आये हैं। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियोंका मरण नहीं होता है। अपवादरूप प्रकृतमें जिन उपशमसम्यग्दृष्टि असंयतोंका मरण होता है उन्हें श्रेणीसे उतरे हुए द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि ही समझना चाहिए। आगे पृ. ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर जो श्रेणीपर चढते या उतरते हुए मरण लिखा है , वह द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसे उपशमश्रेणीपर चढे हुओं की अेपक्षा लिखा है, न कि प्रथमोपशम असंयतगुणस्थानकी अपेक्षा।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५०

५ शंका- धवलराज खंड४, पृष्ठ ३५०, ३६६ पर सम्मूर्च्छन जीवके सम्यग्दर्शन होना लिखा है। परन्तु लब्धिसार गाथा २ में सम्यग्दर्शनकी योग्यता गर्भजके लिखी है, सो इसमें विरोधसा प्रतीत होता है , खुलासा करिए : (नानकचन्द जैन, खतौली, पत्र १६-३-४२)

समाधान – लब्धिसार गाथा दूसरीमें जो गर्भजका उल्लेख है, वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिकी अपेक्षासे हैं। किन्तु यहां पूर्वोक्त पृष्ठोंमें जो सम्मूर्च्छिम जीवके संयमासंयम पानेका निरूपण हैं, उसमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वका उल्लेख नहीं हैं, इससे ज्ञात होता है कि यहां वह कथन वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षासे किया गया है। अतएव दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५३

६ शंका – आपने अपूर्वकरण उपशामकको मरण करके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होना लिखा है, जब कि मूलमें 'उत्तमो देवो' पाठ है। क्या उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तरमें ही जाते हैं ? क्या प्रमत्त और अप्रमत्तवाले भी सर्वार्थसिद्धिमें जा सकते हैं ?

(नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-३२)

समाधान – इस शंकामें तीन शंकायें गर्भित हैं जिनका समाधान क्रमशः इस प्रकार है -

(१) मूलमें 'उत्तमो देवो ' पाठ नहीं, किन्तु 'लयसत्तमो देवो ' पाठ है। लयसत्तमका अर्थ अनुत्तर विमानवासी देव होता है। यथा-लवसत्तम-लवसप्तम-पुं.। पंचानुत्तरविमानस्थदेवेषु। सूत्र. १

श्रु. ६ अ. । सम्प्रति लवसप्तदेवस्वरूपमाह -

सत्त लवा जई आह पहुं पमाणं ततो उ सिज्झंतो ।

तत्तियमेत्तं न हु तं तो ते लवसत्तमा जाया ॥ १३२ ॥

सव्वट्ठसिद्धिनामे उक्कोसठिई य विजयमादीसु ।

एगावसेसगब्भा भवंति लवसत्तमा देवा ॥ १३३ ॥ व्य. ५ उ.

अभिधानराजेन्द्र, लवसत्तमशब्द.

(२) उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तर विमानोंमें ही जाते हैं , ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी निम्न गाथासे ऐसा अवश्य ज्ञात होता है कि चतुर्दशपूर्वधारी जीव लान्तव-कापिष्ठ कल्पसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पन्न होते हैं । चूंकि ' **शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः** ' के नियमानुसार उपशमश्रेणीवाले भी जीव पूर्ववित् हो जाते हैं , अतएव उनकी लान्तवकल्पसे ऊपर ही उत्पत्ति होती है नीचे नहीं, ऐसा अवश्य कहा जा सकता है । वह गाथा इस प्रकार है -

दसपुव्वधरा साहेम्मप्पहुदि सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं

चोद्दसपुव्वधरा तह लतवकप्पादि वच्चंते । ति. प. पत्र २३७, १६

(३) उपशमश्रेणीपर नहीं चढनेवाले, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें ही परिवर्तनसहस्रोंको करनेवाले साधु सर्वार्थसिद्धिमें नहीं जा सकते हैं, ऐसा स्पष्ट उल्लेख देखनेमें नहीं आया । प्रत्युत इसके त्रिलोकसार गाथा नं. ५४६ के ' सव्वट्ठो त्ति सुदिट्ठि महव्वई ' पदसे द्रव्यभावरूपसे महाव्रती संयतोंका सर्वार्थसिद्धि तक जानेका स्पष्ट विधान मिलता है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४११

१७ शंका - योग-परिवर्तन और व्याघात -परिवर्तनमें क्या अन्तर है ?

(नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान - विवक्षित योगका अन्य किसी व्याघातके विना काल-क्षय हो जाने पर अन्य योगके परिणमनको योग-परिवर्तन कहते हैं । किन्तु विवक्षित योगका कालक्षय होने के पूर्व ही क्रोधादि निमित्तसे योग-परिवर्तनको व्याघात कहते हैं । जैसे - कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान है । जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण मनोयोगका काल पूरा हो गया तब वह वचनयोगी या काययोगी हो गया । यह योग-परिवर्तन है । इसी जीवके मनोयोगका काल पूरा होनेके पूर्व ही कषाय, उपद्रव, उपसर्ग आदिके निमित्तसे मनोयोग बदल कर वचनयोगी या काययोगी हो गया, तो यह योगका परिवर्तन व्याघातकी अपेक्षासे हुआ ।

योग परिवर्तनमें काल प्रधान है, जब कि व्याघात-परितर्वनमें कषाय आदिका आघात प्रधान है। यही दोनोंमें अन्तर है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५६

८ **शंका** - पृष्ठ ४५६ में ' **अण्णलेस्सागमणासंभवा** ' का अर्थ ' अन्य लेश्याका आगमन असंभव है ' किया है, होना चाहिए - अन्य लेश्यामें गमन असंभव है ?

(जैन संदेश, ता. ३०-४-४२.)

समाधान - किये गये अर्थमें और सुझाये गये अर्थमें कोई भेद नहीं है। ' अन्य लेश्याका आगमन ' और ' अन्य लेश्यामें गमन ' कहनेसे अर्थमें कोई अन्तर नहीं पडता। मूलमें भी दोनों प्रकारके प्रयोग पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ - प्रस्तुत पाठके पूर्वही वाक्य है - '**हीयमान-वड्ढमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा** ' अर्थात् हीयमान कृष्णलेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आ गई, इत्यादि।